दास-प्रथा पर अरस्तू के विचार

(ARISTOTLE'S VIEWS ON SLAVERY)

अरस्तू के दास-प्रथा पर विचार उसकी रूढ़िवादिता के परिचायक हैं। यद्यपि उसके समय में ही एण्टीफोन जैसे सोफिस्ट विचारक दासता को अप्राकृतिक, अमानुषिक, निकृष्ट और त्याज्य संस्था मानकर उसके उन्मूलन के समर्थक थे लेकिन अरस्तू उनके इस मत का विरोधी और दास-प्रथा का समर्थक था। वह उसे एक प्राकृतिक और न्यायोचित संस्था मानता था क्योंकि दासों के अस्तित्व पर ही सारी यूनानी सभ्यता की व्यवस्था आधारित थी और उनकी मुक्ति उसके विनाश का कारण बन सकती थी। स्वयं अरस्तू कई दासों का स्वामी था। दासों को वह सम्पत्ति के सजीव उपकरण मानता था जो सम्पत्ति के निर्जीव उपकरणों के प्रयोग के लिए अनिवार्य थे। अतः दास ही वे सजीव उपकरण थे जो स्वामियों को वह आवश्यक 'अवकाश' (Leisure) प्रदान करते थे जो उन्हें उनके जीवन की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की चिंता से मुक्त कर उन्हें अपना बौद्धिक और नैतिक उत्पादन करने का

2020/11/10 10:05

और उस आधार पर राज्य संचालन का अवसर प्रदान करते थे। अतः अरस्तू अपनी सारी वैज्ञानिकता को छोड़कर एक यथार्थवादी की भाँति दासता जैसी अमानुषिक प्रथा के समर्थन में आ खड़ा होता है। यद्यपि अरस्तू ने दासों के साथ मानवीय व्यवहार करने का समर्थन किया है लेकिन उसका समर्थन उसे इस दृष्टि से एक रूढ़िवादी और प्रतिक्रियावादी विचारक ही सिद्ध करता है।

दास की परिभाषा और महत्व—अरस्तू नागरिकों के गृह प्रबन्ध की समुचित व्यवस्था के लिए दो तरह के उपकरण आवश्यक मानता है—सजीव एवं निर्जीव। दास सजीव उपकरण की श्रेणी में आते हैं जो निर्जीव उपकरणों का प्रयोग कर उत्पादन का कार्य करते हैं और उसके माध्यम से उस भौतिक सामग्री का उत्पादन करते हैं जो नागरिकों के जीवन की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर उन्हें विभिन्न तरह की सुविधा प्रदान कर उन्हें वह 'अवकाश' प्रदान करते हैं, ताकि वे एक सद्गुणी जीवन व्यतीत कर सकें, विवेक और बुद्धि का विकास कर सकें तथा अपने नागरिक कर्तव्यों का निर्वाह कर सकें।

दास की परिभाषा करते हुए **अरस्तू** कहता है कि "कोई व्यक्ति जो प्रकृति से अपना नहीं है बल्कि दूसरों का है, वह प्रकृतिशः दास है।" इसको स्पष्ट करते हुए वह आगे कहता है कि प्रकृति दो तरह के मनुष्यों का निर्माण करती है—एक जो शारीरिक दृष्टि से बलवान हैं और दूसरे जो बौद्धिक दृष्टि से सामर्थ्यवान हैं। शारीरिक दृष्टि से जो व्यक्ति बलवान हैं, वे स्वाभाविक दृष्टि से दास हैं और बौद्धिक दृष्टि से जो सामर्थ्यवान हैं, वे नागरिक या उनके स्वामी और शासक हैं। दास स्वामियों की सेवा के लिए निर्मित किये गये हैं अतः उनकी सेवा उनके जीवन का उद्देश्य है। वे विवेकयुक्त तो नहीं हैं लेकिन अपने स्वामियों की आज्ञाओं को समझने की शक्ति या बुद्धि रखते हैं। इसी आधार पर वे उत्पादन के निर्जीव उपकरणों से भिन्न हैं।

दासता के सम्बन्ध में तर्क—दासता के सम्बन्ध में निम्न तर्क दिये जाते हैं :

(1) **दासता एक स्वाभाविक संस्था**—अरस्तू दासता को एक प्राकृतिक संस्था घोषित करता है। वह कहता है कि मनुष्य प्राकृतिक दृष्टि से असमान होते हैं। कुछ में शारीरिक बल अधिक होता है तो कुछ में बौद्धिक क्षमता और शक्ति। अतः यह उचित ही है कि बौद्धिक शक्ति शारीरिक शक्ति पर शासन करे। प्रकृति में यह हम सर्वत्र देखते हैं। उदाहरणस्वरूप, आत्मा शरीर पर, मानव पशुओं पर, पुरुष स्त्री पर, माता-पिता बच्चों पर शासन करते हैं और यह शासक-शासित का सम्बन्ध पूर्णतः न्यायोचित है। इस आधार पर **अरस्तू** कहता है कि "अपने जन्म से ही कुछ शासित होने के लिए और कुछ शासन करने के लिए पैदा होते हैं।" यह भी प्राकृतिक है कि जो श्रेष्ठ है, वह शासन करे और जो निकृष्ट है, वह उनसे शासित हो। दास क्योंकि स्वामी से बौद्धिक दृष्टि से निकृष्ट है, अतः स्वामी के शासन-अनुशासन में रहे, यह पूर्णतः प्राकृतिक है और तर्कसंगत है।

(2) **दासता स्वामी और दास दोनों के लिए उपयोगी**—अरस्तू की मान्यता है कि दासता एक प्राकृतिक संस्था ही नहीं वरन् एक अनिवार्य और उपयोगी संस्था भी है। अनिवार्य इस दृष्टि से कि परिवार और राज्य के उद्देश्यों को स्वामी-दास सम्बन्ध के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है तथा उससे अवकाश की उत्पत्ति होती है जिससे एक नागरिक अपने चरित्र में सद्गुणों का विकास कर अपने नागरिक कर्तव्यों के निर्वाह करने की क्षमता और अवसर प्राप्त करता है। दास-प्रथा उपयोगी इस दृष्टि से है कि वह स्वामी को जहाँ नागरिक के रूप में कर्तव्य निर्वाह का अवसर प्रदान करती है, वहीं वह दास में भी विवेकी स्वामी के संसर्ग में रहने के कारण आत्म-संयम और 'व्युत्पन्न श्रेष्ठता' (Derivative Excellence) उत्पन्न करती है अर्थात् उसमें भी विवेक और उसे समझने का गुण उत्पन्न करती है। इस तरह दासता स्वामी और दास या सेवक दोनों के लिए लाभप्रद सिद्ध होती है।

(3) **दासता व्यावहारिक**—अरस्तू दासता को प्राकृतिक के साथ-साथ व्यावहारिक आधार पर भी उचित ठहराता है। उसके समय में दास-प्रथा यूनान के सभी नगर-राज्यों में प्रचलित थी तथा सम्पूर्ण यूनानी सभ्यता का दारो-मदार उसी पर आधारित था। दासता को समाप्त करने का अर्थ यूनानी सभ्यता को ही नष्ट करना होता, अरस्तू इस तथ्य से भली-भाँति परिचित था। अतः उसने व्यावहारिक आधार पर भी उसका समर्थन किया और उसे यूनानी सभ्यता के अस्तित्व के लिए एक अनिवार्य व्यावहारिक संस्था घोषित किया।

दासता के प्रकार—अरस्तू दासता के दो प्रकार बताता है—प्रथम, प्राकृतिक दासता तथा द्वितीय, वैधानिक दासता। प्राकृतिक दासता के अन्तर्गत वे दास आते हैं जो शारीरिक बल की दृष्टि से शक्तिशाली लेकिन विवेक की दृष्टि से शून्य या अल्पशून्य हैं जो स्वामी के आदेशों को समझने और उनके पालन तक ही सीमित हैं। इसके विपरीत, वैधानिक दास वे हैं जो बौद्धिक और नैतिक दृष्टि से उच्च होते हुए भी युद्ध में पराजय के कारण दास बना

2020/11/10

लिये गये हैं। वह ऐसी वैधानिक दासता बर्बर जातियों के लिए तो उचित मानता है लेकिन यूनानियों के लिए नहीं। पराजय के बाद भी यूनानी को दास नहीं बनाया जाना चाहिए क्योंकि वे जन्मजात दास नहीं हैं।

दास-प्रथा को मानवीय बनाने के निर्देश—अरस्तू दासता का समर्थक होते हुए भी उसके क्रूर स्वरूप का समर्थक नहीं है। वह उसे क्रूरताविहीन बनाने के लिए कुछ निर्देश देता है, ताकि दासों में असंतोष उत्पन्न न हो और वे राज्य तथा समाज के लिए एक खतरा न बन जायें। दास-प्रथा को मानवीय बनाने हेतु वह निम्नलिखित निर्देश देता है :

(1) **दास के साथ स्वामी का मित्रतापूर्ण व्यवहार**—अरस्तू सर्वप्रथम दास-प्रथा की क्रूरता को समाप्त करने के लिए स्वामियों को यह निर्देश देता है कि यद्यपि दास उनका सेवक है लेकिन फिर भी वह एक मनुष्य है। बुद्धि न होते हुए भी वह भावनाशील है। अतः उसकी भावनाओं को ध्यान में रखते हुए स्वामी को उसके साथ मानवीय एवं मित्रतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए तथा उसकी सुख-सुविधाओं का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए।

(2) **दासता से स्वतंत्र होने का अवसर**—प्रत्येक दास मुक्ति का आकांक्षी होता है। अतः उसमें मुक्ति की आकांक्षा को जीवित रखने हेतु यह आवश्यक है कि उसे यह विश्वास होना चाहिए कि समर्थ होने पर वह भी दासता से मुक्त होकर एक स्वतंत्र जीवन जीने का अवसर प्राप्त कर सकता है।

(3) **आवश्यकता से अधिक दास नहीं**—अरस्तू इस बात की सख्त हिदायत देता है कि स्वामियों को आवश्यकता से अधिक दास नहीं रखने चाहिए। उनकी संख्या इस दृष्टि से सीमित होनी चाहिए।

(4) **दासता वंशानुगत नहीं**—अरस्तू दासता को वंशानुगत नहीं मानता है। यह जरूरी नहीं है कि दास की सन्तान भी दास ही हो। दास-संतानों में यदि विवेक शक्ति है तो उन्हें दासता से मुक्त कर दिया जाना चाहिए।

आलोचना—अरस्तू द्वारा प्रतिपादित और समर्थित दास-प्रथा को मानवीय आधार पर स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसी कारण प्राचीन समय में सर्वमान्य और प्रचलित होते हुए भी आधुनिक समय में इसे वैधानिक आधार पर सम्पूर्ण विश्व से समाप्त कर दिया गया है। अतः अब न स्वामी हैं, न दास। अरस्तू के दास-प्रथा के इस सिद्धान्त की अविश्वसनीय, अप्राकृतिक, अयुक्तियुक्त, अमानवीय, संकीर्ण, क्रूर और यूनानी पूर्वाग्रहों से ग्रसित होने के कारण कटु आलोचना की गयी है। उसकी आलोचना के प्रमुख बिन्दु इस प्रकार हैं :

(1) **अतार्किक**—अरस्तू की यह मान्यता है कि कुछ लोग जन्म से शासक और कुछ लोग शासित होते हैं लेकिन वह क्या मापदण्ड है जिसके आधार पर इसे निश्चित किया जा सके। कितना शारीरिक बल एक व्यक्ति को दास बनाने के लिए आवश्यक है। अरस्तू इस सम्बन्ध में कोई स्पष्टीकरण नहीं देता है। फिर शिक्षण-प्रशिक्षण के माध्यम से यह भी तो सम्भव है कि विवेकहीन व्यक्ति को पूर्णतः या अंशतः विवेकयुक्त बनाया जा सके, ताकि उसका दास बनना उचित ही न हो। अरस्तू इस सम्भावना की अवहेलना करता है और शारीरिक दृष्टि से बलशाली व्यक्ति को विवेकहीन घोषित कर उसके दास होने का राग अलापता रहता है।

(2) **अनुचित**—दास-प्रथा अतार्किक ही नहीं, अनुचित भी है। सम्पूर्ण मानव जाति को दो भागों में विभाजित करना प्रोफेसर रॉस (Ross) के अनुसार अनुचित है। यद्यपि व्यक्ति-व्यक्ति में बौद्धिक और नैतिक गुणों की दृष्टि से अन्तर हो सकता है लेकिन इस आधार पर उन्हें स्वामी-दास और शासक-शासित के रूप में विभाजित करना अनुचित ही नहीं, अन्यायपूर्ण भी है क्योंकि यदि ऐसा किया गया तो मानव जाति का बहुसंख्यक भाग दासों के रूप में परिवर्तित हो जायेगा।

(3) **असमानता पर आधारित**—अरस्तू का दासता का सिद्धान्त मानव-असमानता पर आधारित है। मनुष्य-मनुष्य में विवेक और ज्ञान सम्बन्धी असमानता हो सकती है लेकिन इसके बावजूद उनमें एक आधारभूत समानता होती है जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। इस आधारभूत मानव-समानता की अवहेलना करना मानव जाति का अपमान करना है। **मैक्सी** का इस सम्बन्ध में कथन है कि "आधुनिक युग में जबकि दासता के हर रूप को अवैधानिक घोषित कर दिया गया है, दासता का समर्थन करने वाली अरस्तू की पुस्तक 'पॉलिटिक्स' के इस भाग का अध्ययन वर्जित कर दिया जाना चाहिए, ताकि लोगों में दासता के सम्बन्ध में गलत धारणाएँ उत्पन्न न हों।"

(4) **दास पूर्णतः विवेकशून्य नहीं**—अरस्तू दासों को पूर्णतः विवेकशून्य मानता है और इसी आधार पर उनकी दासता का समर्थन करता है। दूसरी तरफ वह यह भी कहता है कि दास में स्वामी की आज्ञा को समझने और उसका पालन करने का विवेक होता है। यह एक विरोधाभासी स्थिति है। दास विवेकशून्य होकर भी पूर्णतः

विवेकशून्य नहीं होता। फलतः उसकी दासता का जिस आधार पर समर्थन किया गया है, वही आधार नष्ट हो जाता है।

(5) **दास की स्थिति स्पष्ट नहीं**—अरस्तू दास को कभी जीवित उपकरण तो कभी स्वामी का मित्र घोषित करता है। अतः दास की वास्तविक स्थिति क्या है, इसका स्पष्ट पता लगाना कठिन है। वह सजीव उपकरण है या मित्र ? **मैकिलवेन** इस ओर संकेत करते हुए कहता है कि "उसे पशु तो बना दिया जाता है लेकिन मानवता से भी मुक्त नहीं किया जाता।" फिर मित्रता तो समान लोगों में होती है। स्वामी और दास तो असमान हैं। उनमें मित्रता कैसी और किस आधार पर ? इस प्रश्न का भी उत्तर अरस्तू देने में असमर्थ रहता है।

(6) **अविश्वसनीय**—अरस्तू का यह कथन पूर्णतः अविश्वसनीय और एक सीमा तक हास्यास्पद भी प्रतीत होता है जब वह कहता है कि दासों का शरीर बलवान और हृष्ट-पुष्ट होता है और स्वामियों का शरीर कोमल और संतुलित। सर्वत्र इसके अपवाद दृष्टिगोचर होते हैं।

(7) **अमनोवैज्ञानिक**—अरस्तू यह कहता है कि दास को तन और मन दोनों दृष्टियों से स्वयं को स्वामी के व्यक्तित्व में लीन कर देना चाहिए, जबकि मनोविज्ञान यह सिद्ध करता है कि एक व्यक्ति शारीरिक समर्पण तो कर सकता है लेकिन मानसिक समर्पण नहीं। प्रत्येक व्यक्ति में चाहे वह दास ही क्यों न हो, अपनी कुछ वैयक्तिक इच्छाएँ, भावनाएँ और अनुभूतियाँ होती हैं जो उसके व्यक्तित्व को अन्य व्यक्ति से चाहे वह उसका स्वामी ही क्यों न हो, पृथक् करती हैं।

(8) **जातीय अहंकार का प्रतीक**—अरस्तू यूनानी चाहे विजेता हो या पराजित, इसकी दासता का विरोध करता है। वह यूनानी जाति को शासकीय जाति मानता है। यह उसके अहंकार का प्रतीक है क्योंकि शासकीय जाति की धारणा का आज पूर्णतः खंडन हो चुका है तथा स्वशासन और स्वराज्य के सिद्धान्त के प्रतिपादन के माध्यम से यह सिद्ध किया जा चुका है कि विश्व की हर जाति-प्रजाति शासक और शासित बनने के योग्य है। यह निर्णय परिस्थितिजन्य है, प्राकृतिक नहीं।

(9) **अपमानजनक**—अरस्तू का दासता का सिद्धान्त श्रमिक शोषण पर आधारित ही नहीं, उसका अपमान करने वाला भी है। जो मानव श्रम करता है, अरस्तू ने उसे उसके श्रम से उत्पादित सामग्री के उपभोग से वंचित कर दिया है तथा जो श्रम नहीं करता है, उसे उसने उसके उपभोग का सम्पूर्ण अधिकार प्रदान कर दिया है। यही नहीं, वह श्रम करने वालों को किसी तरह के राजनीतिक अधिकार भी प्रदान नहीं करता है। शायद राज्य की आर्थिक व्यवस्था की सुदृढ़ता के लिए उसने ऐसा किया है लेकिन उसका यह कार्य अन्यायपूर्ण है। **मैकिलवेन** इस ओर संकेत करते हुए कहता है कि "राज्य की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति के लिए कोई सही आर्थिक योजना होनी चाहिए, न कि कुछ लोगों का शोषण। श्रम का इससे बड़ा अपमान और क्या हो सकता है।"[1]

(10) **दासता का सिद्धान्त वैधानिक नहीं**—अरस्तू का दासता का सिद्धान्त वैज्ञानिक नहीं है क्योंकि वह मनुष्य की तुलना पशु से करता है तथा दासों को पशुओं की संज्ञा देता है। मनुष्य चाहे कितना ही विवेकहीन क्यों न हो अंततः वह मनुष्य है और इसी आधार पर उसके साथ व्यवहार किया जाना चाहिये। अरस्तू ऐसा नहीं करके दास और पशु को समान बताता है। वैज्ञानिक दृष्टि से उसकी यह मान्यता उचित नहीं मानी जा सकती।

(11) **दासता का सिद्धान्त संघर्ष को जन्म देने वाला है**—अरस्तू का राज्य दो परस्पर विरोधी वर्गों में विभाजित है—श्रमिक या दास वर्ग और स्वामी या शासक वर्ग। एक सम्पूर्ण उत्पादन का कार्य करता है लेकिन उसके उपभोग का अधिकारी नहीं है। दूसरा उत्पादन नहीं करता है लेकिन उसके उपभोग का पूर्णतः अधिकारी है। यह वर्गों की परस्पर स्थिति संघर्ष को जन्म देने वाली है क्योंकि यह श्रमिक वर्ग के नग्न शोषण पर आधारित है। अरस्तू के राज्य में श्रमिक असंतोष एक निरन्तर बना रहने वाला तत्व है। यह श्रमिक असंतोष घनीभूत होकर विस्फोट का रूप धारण कर राज्य में संघर्ष और अशांति की स्थिति उत्पन्न कर सकता है। फलतः राज्य अराजकता से ग्रसित होकर अस्थिरता का शिकार हो सकता है। अरस्तू इस सम्भावना को नहीं देख सका।

मूल्यांकन—अरस्तू के दासता सम्बन्धी विचार पूर्णतः अवैज्ञानिक, अप्राकृतिक और अलोकतान्त्रिक हैं। अतः आधुनिक युग में जबकि मानव मात्र की समानता के सिद्धान्त को सर्वत्र मान लिया गया है, स्वीकार और समर्थन करने योग्य नहीं है लेकिन यह आधुनिकयुगीन दृष्टिकोण है। अरस्तू के समय में यूनान में ही नहीं, विश्व के अन्य राज्यों में भी दास-प्रथा एक आम और सर्वमान्य प्रथा थी तथा उनकी सारी सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक

1 Mac-Ilwain : *The Growth of Political Thought in the West*, p. 62.

व्यवस्था इसी पर आधारित थी। दासों ने अमानवीय परिस्थितियों में रहकर भी विश्व सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। अरस्तू भी उनके श्रम के महत्व से परिचित था। अतः वह दास-प्रथा के उन्मूलन का समर्थक बनने के स्थान पर उसे और अधिक मानवीय बनाने का समर्थक था और वही उसने किया। वैधानिक चिन्तक होते हुए भी वह अपने समय की इस अमानवीय प्रथा का विरोध नहीं कर सका। वह अपने समय का बंदी था। इस ओर संकेत करते हुए **इबेंस्टीन** नामक लेखक का कथन है कि "उसकी दासता सम्बन्धी स्वीकृति यह सिद्ध करती है कि किस तरह बुद्धिमान और महान दार्शनिक अपने समय की संस्थाओं का और उन पक्षपातों का बंदी होता है जो उन संस्थाओं को तर्क द्वारा औचित्यपूर्ण बताती है।"[1] अतः दास-प्रथा के समर्थन का दोष अरस्तू का कम और उसके समय की परिस्थितियों का अधिक है जिनसे अरस्तू और उसका चिन्तन प्रभावित था।